International Journal of Academic Research and Development
ISSN: 2455-4197
Impact Factor: RJIF 5.22
www.academicsjournal.com
Volume 2; Issue 4; July 2017; Page No. 732-733

हिन्दी भाषा की संरचना और धर्मनिरपेक्षता

डा0 नीतू शर्मा
एसोशिएट प्रोफेसर, आई0टी0 कालेज, लखनऊ, उत्तर प्रदेश, भारत

पस्तावना

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के युग में हिन्दी संस्कृतनिष्ठता और फारसी के वर्चस्व को चुनौती देकर उसी तरह नई चाल में ढ़ली थी, जिस तरह तुलसी ने संस्कृत छोड़कर अवधी की राह पकड़ी थी या बुद्ध ने पालि में उपदेश दिया था।

आज हिन्दी, उर्दू, और हिन्दुस्तानी के विवाद को औपनिवेशिक प्रभेद नीति की रोशनी में न देखकर मज़हब, जातिवाद और सत्ता के लिये रस्साकशी के सन्दर्भो में देखा जा रहा है। हिन्दी को ब्रजभाषा, उर्दू और अंग्रेजी की एंटीथीसिस के रूप में सीमित करके उसके संघर्ष पर लीपापोती का आखिरकार क्या मकसद है? खासकर इधर अंग्रेजी में कुछ बुद्धिजीवियों द्वारा हिन्दी के विकास को पुनरूत्थानवाद से जोड़कर देखा जा रहा है। साहित्य की भाषा जनता की टकसाल में बनती है। वह दरबार, दफ्तर और बैठकों में नहीं बनती। साहित्य की भाषा जनता की भाषा से बहुत दूर नही जा सकती। खड़ी बोली आन्दोलन, अर्थात खड़ी बोली कविता–सम्बन्धी आन्दोलन का मंच था ''हिन्दोस्तान' पत्र। यह साहित्यिक विवाद नवम्बर 1887 से अप्रैल 1888 तक चला था। यह लगभग एक शास्त्रार्थ की तरह था। प्रताप नारायण मिश्र हिन्दी की एकस्त्रोतपरकता का बखान करते थे, ''ब्रजभाषा और नवीन हिन्दी दो भिन्न–भिन्न भाषा हैं–नहीं भाई! भिन्न कहां हैं? दोनों की जननी संस्कृत है, दोनों का देश आर्य देश है।'' 'हिन्दी एक बहुस्त्रोतपरक भाषा है। यह संस्कृत की बेटी नही हैं। कई भाषा क्षेत्र के लोगों के परस्पर सम्पर्को से हिन्दी का निर्माण हुआ है। यह सिर्फ हिन्दुओं की चीज नहीं है। दूसरी भाषाओं के विकास को बिल्कुल सहज ढंग से देखा गया जबकि हिन्दी के विकास को हिन्दी समाजों के जातीय विकास से जोड़कर देखने में लगातार संकोच बरता गया। वह कभी उर्दू, कभी ब्रज एवं हिन्दी क्षेत्र की ऐसी ही अन्य भाषाओं–बोलियों और कभी आश्चर्यजनक रूप से अंग्रेंजी को एंटीथीसिस बना कर खड़ी कर दी गई। हिन्दी का इन सभी से विरोध का ऐसा रिश्ता कभी नहीं था कि इसे एन्टीथीसिस कहा जाए। फिर सिंथीसिस क्या है? उत्तर–औपनिवेशिक मूल्यांकन में नागरी लिपि में हिन्दी का ब्राहमणों, खत्रियों और बनियों की भाषा फारसी लिपि में हिन्दुस्तानी को कायस्थों की भाषा कहकर पूरे मामलों को सरकारी नौकरी के लिये जातिवादी स्पर्धा बताने की भी कोशिश हुई। हिन्दी कभी भी राज्याश्रय में नहीं, लोक जीवन की प्रक्रिया में विकसित हुई। रामचन्द्र शुक्ल ने इसकी मिश्रणशील प्रकृति की ओर संकेत देते हुए कहा है, '' इसमें सन्देह नहीं है कि पूर्व–आधुनिक युगों में हिन्दी बहुवचनात्मक थी। नागरी का अस्तित्व भी हिन्दी के आदिकाल से था। हिन्दी और उर्दू के पुराने रूपों के बीच इतनी सांस्कृतिक निकटता थी कि विवाद का एक मुद्दा यह भी था कि उर्दू से हिन्दी निकली या हिन्दी से उर्दू। दरअसल 'हिंदवी' और 'हिन्दुस्तानी'' के नाम से जो भाषा जानी जाती है, उसमें अनेकरूपता और काफी अनस्थिरता रही है। हिन्दी को आधुनिक खड़ी बोली अपने क्षेत्र की जिन भाषाओं, उप भाषाओं और बोलियों का रिक्थ लेकर विकसित हुई है, उनमें निश्चिय ही एक 'हिन्दुस्तानी'' भी है। हिन्दी हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों की जबान से निर्मित हुई है। उसमें जब तक संस्कृत और अरबी–फारसी के कठिन शब्द भरे नहीं होते, तब तक यह समझना कठिन होता है कि यह हिन्दी है या उर्दू।

हिन्दी के विकास को सिर्फ भाषावैज्ञानिक और राजनीतिक गुणा–भाग से नहीं समझा जा सकता। इसे हिन्दी क्षेत्र के चढ़ाव–उतार वाले बहुरंगे जीवन में घटित मेल–मिलाप, दुख–सुख में साझेदारी, व्यापारिक गतिशीलता और साहित्यिक अन्तर्क्रियाओं के भीतर से ही पहचाना जा सकता है। आज की हिन्दी यदि फारसी लिपि से बंधी होती और वह गिलक्राइस्ट या शिवप्रसाद सितारेहिन्द की 'हिन्दुस्तानी' होती, हम इसकी विरासत के एक बहुत बड़े हिस्से को, खासकर सिद्ध, नाथ, विद्यापति, कबीर, जायसी, सूर, तुलसी, रहीम, रसखान, घनानन्द, आदि को बचाकर नहीं रख पाते और न करोड़ों के पास अपनी सही जबान होती और न हमें प्रसाद, निराला, मुक्तिबोध, नागार्जुन जैसे कवि मिलते। हिन्दी का शब्द भण्डार, उसकी भावसंपदा और विचारशक्ति काफी सीमित हो जाती। इसलिये हिन्दी के प्रचलित स्वरूप के उदय को एक साम्प्रदायिक परिघटना की जगह उपनिवेशवाद विरोधी राष्ट्रीय परिघटना ही समझना चाहिए। हिन्दी की व्यापक स्वीकृति पुररूत्थानवाद की पराजय थी।

और उसी समय मैथिलीशरण गुप्त की 'हिन्दू' कविता पुस्तक आई, जिसमें हिन्दू पुनरूत्थानवादी दंभ और शोक ही ज्यादा था। लेकिन यही दौर था, जब उपनिवेशवाद विरोधी संघर्ष की प्रक्रिया में धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रीयता भी तेजी से अपना आकार ले रही थी। सांप्रदायिकता बेअसर हो रही थी। अंध राष्ट्रीयता को मानवता का कोढ़ समझा जा रहा था। इन सबके अलावा, भारत को पश्चिमी दुनिया के नए ज्ञान और आविष्कार प्रभावित कर रहे थे। अब किसी भी हालत में जीर्ण–शीर्ण प्राचीन का नए युग की लहरों के आगे टिक पाना संभव नहीं था। हिन्दी और उर्दू दो एकदम अलग–अलग परम्पराएं नही थी, क्योंकि इनका अभ्युदय एक ही जातीय वातावरण में हुआ था। इनका स्वरूप धार्मिक नहीं था। लोक जीवन में ये जुबान पर आज भी एक है, शिष्ट समुदायों में कलम तक आकर भले दो हो जाया करें। इतिहास में कई बार संस्कृति की सहज मिश्रित धाराओं को राजनीतिक चालें पुनः अलग–अलग कर देती है। हिन्दी और उर्दू दो परम्पराएं बन गई।

पदम सिंह शर्मा ने अपनी पुस्तक 'हिन्द–उर्दू और हिन्दुस्तानी' के सवाल पर पूरे मामले को नाम भेद का झगड़ा कहते हुए लिखा है ''उर्दू के बहुत से हिमायती इस 'रोशनी' के जमाने में भी यह कहते सुने जाते हैं कि हिन्दी एक नया और कल्पित नाम है, जो हिन्दुओं ने उर्दू का बायकाट करने की गरज से गढ़ लिया है। दरअसल हिन्दी कोई भाषा नहीं, उर्दू ही देश की असली जबान है। इसी

तरह बहुत से हिन्दीवालों को उर्दू नाम से कुछ चिढ़ सी है। जो लोग हिन्दी नाम को कल्पित या मनगढ़न्त समझकर नाक–भौं चढ़ाते हैं यह इस नाम की प्राचीनता या सत्ता ही को अस्वीकार करते हैं, वह एक ऐतिहासिक सत्य का अपलाप करते हैं। हिन्दी, उर्दू की अपेक्षा बहुत ही पुराना और सर्वमान्य नाम हैं।''

यह कहना कठिन है कि यदि 18वीं सदी के भारत में स्वतंत्र औद्योगिक विकास घटित होता तो हिन्दी–उर्दू हिन्दुस्तानी एक–दूसरे के कितने निकट होते। औपनिवेशिक स्थितियों में ऐसी संभावनाएं नष्ट कर दिये जाने से सामाजिक मामलों की तरह भाषा के मुद्दे पर भी रूढ़िवादी रवैया पनपा। अंग्रेजी राज ने जिस तरह जाति बिरादरी, सम्प्रदाय और रीति'–रिवाज के स्तर पर रूढ़िवाद को प्रश्रय दिया, भाषा के स्तर पर भी रूढ़िवाद को सींचा गया और प्रभेद बढ़ाया गया। हिन्दी पट्टी में यही घटित हुआ। नवजागरण के छिटपुट प्रयासों ने रूढ़िवाद को धक्के दिए, लेकिन इन धक्कों में इतना जोर नहीं था कि प्रभेद –रेखाएं धूमिल हो जाएं। फिर भी हिन्दी की जो जातीय परम्परा उभरी उसमें हिन्दी–हिन्दू–हिन्दुस्तानी' की धारणा प्रबल नही थी। उस समय हिन्दी दुनिया में हिन्दी राष्ट्रवाद का कोई अस्तित्व न ही था। हिन्दी की परम्परा का एक स्रोत नहीं था।

आमतौर पर हिन्दी लेखक हिन्दी को एक मिश्रित भाषा के रूप में विकसित करना चाहते थे उनमें संस्कृत के स्रोतों से बाहर के शब्दों को हिन्दी से चुन–चुनकर निकालने की प्रवृत्ति नही थी। महावीर प्रसाद द्विवेदी (1864–1938) ने देश व्यापक भाषा का सवाल उठाया था। साथ में यह भी कहा था, ''उर्दू में संस्कृत, फारसी, अरबी और तुर्की के जो शब्द बिगड़े हुए रूप में प्रचलित हैं, उन्हें अशुद्ध ठहराने की शक्ति किसी में नहीं। ठीक यही बात हिन्दी भाषा में व्यवहृत विदेशी शब्दों के लिये कही जा सकती है।''

महात्मा गांधी ने कहा था, ''हिन्दुस्तानी का स्वरूप स्पष्ट करने के लिये हमें हिन्दी और उर्दू को पोषक तत्वों के रूप में स्वीकारना होगा। इस विकासशील राष्ट्र की स्थानीय भाषाओं को समृद्ध बनाने के लिये हिन्दुस्तानी आवश्यकतानुसार विविध पारिभाषिक शब्द देने में सक्षम होगी। किसी बंगाली या दक्षिण भारत के आदमी के लिये जो हिन्दुस्तानी बोली जाएगी, उसमें संस्कृत मूल के शब्द ज्यादा होंगे। वही वक्तव्य जब पंजाब (अविभाजित) में दिया जाएगा, उसमें अरबी–फारसी मूल के शब्द शामिल होंगे। ऐसी ही हिन्दुस्तानी का प्रयोग मुसलमानों के लिये किया जाएगा, जो संस्कृत मूल के शब्दों को नहीं समझते।'' (सम्पूर्ण भारत के लिये एक भाषा की जरूरत : मेघनाथ साहा)

भाषा एक निहायत राजनीतिक संरचना नहीं है कि वह अपने आपमें साम्प्रदायिक हो। इस तरह न हिन्दी को साम्प्रदायिक संरचना कहा जाना चाहिए और न उर्दू को। दोनों भाषाएं औपनिवेशिक भारत में पिछड़ेपन और प्रभेदनीति की वजह से स्वतंत्र संरचनाए बना दी गई। फिर भी दोनों की एक साझी विरासत है। इसलिये दोनों स्वतंत्र संचरनाए होते हुए भी एक–दूसरे के विपरीत और दूर नहीं है। हिन्दी वाले और उर्दू वाले मिलकर एक जाति न बनाते हो, पर एक समाज जरूर बनाते हैं, भले इसका नामकरण मुश्किल हो। निश्चय ही उस जमाने में 'हिन्दुस्तानी' का ढ़ांचा बहुत स्पष्ट नही था। यह भाषा हो भी जाती तो भारत–पाक बंटवारे के बाद उसे अनाथालय में जाना पड़ता। इसलियें बेहतर यही था कि कई सन्दर्भो में साझी विरासत वाली हिन्दी और उर्दू स्वतंत्र भाषाओं के रूप में विकास करें और एक दूसरे से धर्मनिरपेक्ष रिश्ता भी रखें। आज हिन्दी क्षेत्र में सांस्कृतिक विविधता की रक्षा करना एक अहम दायित्व है। इलेक्ट्रानिक मीडिया ने हिन्दी और उर्दू के बीच दूरी कम कर दी हैं, पर यह भूलना न होगा कि वह सांस्कृतिक उत्कृष्टता और विविधता का भक्षक है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. शब्द योग–साहित्य संस्कृति और कला पत्रिका।
2. हिन्दी समीक्षा स्वरूप और संदर्भ–रामदरश मिश्र।
3. अभिनव कदम पत्रिका
4. समकालीन सृजन संदर्भ–भारत भारद्वाज।
5. कविता क्या है–विजय रंजन।
6. बाजारवाद और जनतंत्र–प्रफुल्ल कोलख्यान।
7. आधुनिक हिन्दी साहित्य के कीर्ति स्तम्भ–सम्पादक योगेन्द्रदत्त शर्मा।